मानवाधिकार एवं महिलाएँ : भारतीय परिदृश्य

[1]प्रिया पुरोहित

सारांश

मानवाधिकार का प्रश्न सम्पूर्ण मानवता के बुनियादी सरोकारों से जुडा एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। अतः किसी भी महिला को महिला होने के कारण मानव अधिकारों के दायरे से पृथक् **नहीं** किया जा सकता है। क्योंकि 'महिला मानवाधिकार' 'मानवाधिकार' की संकल्पना का एक महत्वपूर्ण आयाम है। मानवता से सम्बन्धित संकल्पना की पूर्णता महिला एवं पुरुष दोनों के प्रति हमारे सम्पूर्ण सरोकारों में निहित है। महिला एवं पुरुष के मध्य किसी भी प्रकार का विभेद मानवता के विचार को खण्डित करता है। अतः 'महिला-अधिकार' 'मानवाधिकारों' से कोई पृथक् विचार **नहीं** है, बल्कि 'महिला-अधिकार' 'मानवाधिकार' का पूरक विचार है। महिला अधिकारों के बिना मानव अधिकारों की अवधारणा अधुरी है, क्योंकि मानवता के सम्पूर्ण विचार की परिधि में पुरूष और महिला दोनों ही शामिल हैं। अतः मानवाधिकार की सम्पूर्ण अवधारणा में महिला और पुरुष दोनों के अधिकार सम्मिलित हैं।

मूल शब्द

मानवता, मानवाधिकार, पुरुष-अधिकार, महिला-अधिकार

---

[1]वनस्थली विद्यापीठ, टोक, राजस्थान

प्रस्तावना

मानवाधिकार मानव-समाज की प्रमुख और प्रथम आवश्यकता है। सैद्धान्तिक स्तर पर यह एक नवीन अवधारणा है। यद्यपि चिन्तन के स्तर पर यह एक नवीन अवधारणा है, फिर भी मानव सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में इसके प्रभाव को देखा जा सकता है। ''मानव सभ्यता के विकास का मूल आधार मानवाधिकार ही रहा है।" यह कहना अतिशयोक्ति **नहीं** होगा क्योंकि जीवन की सुरक्षा के प्रति चेतना से प्रेरित होकर ही मानव 'आदिम अवस्था' से 'सभ्य समाज' की दिशा में प्रवृत्त हुआ। इस तरह मानवाधिकार कोई नवीन विचार **नहीं** बल्कि मानव सभ्यता के विकास से जुडा मुल विचार है तथा चिन्तन की केन्द्रीय अवधारणा है। जीवन रक्षा के प्रयासों की प्रेरणा में ही मानवाधिकार का विचार निहित है। इस तरहा मानव चेतना के विकास साथ-साथ मानवाधिकारों का विचार-क्षेत्र विस्तृत होता गया।[1]

वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के साथ ही इसके विस्तृत अध्ययन पर बल दिया जाने लगा। मानवता के घोर विनाशक द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण मानवता की सुरक्षा एवं कल्याण के उद्देश्य से गठित संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी स्थापना के साथ ही मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के लिए प्रयास आरम्भ कर दिये। संयुक्त राष्ट्र चार्टर की धारा 68 के तहत 26 जून, 1945 को सेनफ्रांसिस्को में सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया गया कि आणथक एवं सामाजिक परिषद् मानवाधिकारों को प्रोत्साहन देने के लिए एक आयोग

का गठन करें। इस प्रस्ताव के अनुरूप प्रथम बार मानवाधिकारों के संरक्षण के उद्देश्य से 1946 में ऐलोनोर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में 18 सदस्यीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। इसके पश्चात् दिसम्बर 1948 को अमरीका की श्रीमती फ्रेंकलिन, डॉ रूजवेल्ट तथा लेबनान के डॉ. चार्ल्स मलिक के संयुक्त प्रयासों से 'डिकलरेशन अ,फ ह्यूमन राइट' का प्रारूप तैयार करके संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपा गया, जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को अंगीकार किया गया। मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा में 30 धाराओं को शामिल किया गया, जिनमें विश्वसमुदाय के सभी लोगों के लिए चाहे वे किसी वर्ण या जाति, वर्ग धर्म, लिंग व राष्ट्र के हों, उनके अधिकारों की सुरक्षा और उनकी सर्वोच्चता को प्राथमिकता देने की बात कही गई।[2]

महिला मानवाधिकार

सम्पूर्ण मानवता के बुनियादी सरोकारों से सम्बद्ध होने के कारण महिलाएं भी पुरुषों की भांति समान अधिकारों की अधिकारिणी है। यद्यपि दीर्घकालिक संघर्ष एवं द्वन्द्व के पश्चात मानवाधिकारों की अनिवार्यता पर आम सहमति सम्भव हो सकी है, वही महिला अधिकारों की आवश्यकता, प्रेंति एवं क्रियान्विति के विविध पक्षों पर आज भी विवाद है। आज भी हम महिला अधिकारों की आवश्यकता एवं अस्तिव को सहज स्वीकार नही कर पाए है। भारतीय समाज में यह स्वीकार्यता और भी जटिल है। पारम्परिक भारतीय समाज में महिलाओं की दोयम स्थिति 'महिला-अधिकारों' की द्वष्टि उनकी उपेक्षित स्थिति को व्यक्त करती है। सामान्यतः समाज में महिला अधिकारों का विवेचन उनके संवर्धन की अपेक्षा उनके उल्लंघन के रूप में अधिक होता है। महिला अधिकारों की चिंता का यह चिंतन हम यदा-कदा समाचार पत्रों की सुर्खियों में देख पाते हैं।

यद्यपि तात्विक आधार पर मानवाधिकार एवं महिला मानवाधिकार में कोई भेद **नहीं** है, लेकिन विकास के स्तर पर महिलाओं की उपेक्षित स्थिति ने चिन्तन के धरातल पर महिला-मानवाधिकार के अध्ययन की आवश्यकता को रेखांकित किया है। 'मानवाधिकार', अधिकार एवं मूल अधिकार से व्यापक अवधारणा है। अधिकार कुछ करने या रखने की स्वाधीनता है, जो विधि द्वारा मान्यता प्राप्त और संरक्षित है। 'मूल अधिकार' ऐसे आधारभूत अधिकार हैं, जो किसी नागरिक के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य हैं, जिसके बिना उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है।

'मानवाधिकार' से आशय मानव समुदाय का सदस्य होने के नाते प्रत्येक मानव को राष्ट्रीयता, लिंग, जाति, वर्ण, सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय आदि विभेद के बिना प्राप्त उन समस्त अधिकारों से है, जो जीवन, स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बन्धित तथा उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य होते हैं। मानव अधिकार के अन्तर्गत ऐसे समस्त पक्ष/अधिकार सम्मिलित होते हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने चाहिए, चाहे इसके लिए उपयुक्त कानूनी व्यवस्था हो, न हो। अन्य शब्दों में मानवाधिकार से तात्पर्य संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में अन्तर्निहित उन अधिकारों से है, जो जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित तथा न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हो।[3]

26 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा ने भारतीय संविधान को अन्तिम रूप दिया तथा 26 जनवरी, 1950 से भाारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बन गया।[4] जनता को **समर्पित** भारतीय संविधान के द्वारा स्थापित एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य के अर्न्तगत भारतीय नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता की संकल्पना के द्वारा मानवाधिकारों को मान्यता प्रदान की गई है। भारतीय लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में लोगों को मूल अधिकारों और

स्वतंत्रताओं को गारंटी दी गई है।[5] संविधान के भाग 3 में (अनुच्छेद 12-35) समाविष्ट मूल अधिकार मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा से प्रेरित हैं।

10 दिसम्बर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संध द्वारा मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की गई। इसप्रकार मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के ठीक बाद भारतीय संविधान में अधिकार-पत्र का समावेश, विश्व के अन्य देशों की समकालीन लोकतन्त्रात्मक तथा मानवीय वृत्ति और संवैधानिक प्रथा के अनुरूप ही था।[6] अपने पारम्परिक मूल्यों को **दृष्टिगत** रखते हुए तथा वैश्विक **परिदृश्य** और संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकारों को समुचित स्थान दिया गया। राष्ट्र की एकता तथा आम जनता के हितों के अनुरूप किसी भी राज्य द्वार अब तक बनाए गए मानव अधिकारों के चार्टरों में से संभवतया सर्वाधिक विस्तृत चार्टर संविधान के भाग 3 में शामिल चार्टर है। इसके बारे में न्यायमूणत गजेंद्र गडकर ने कहा है, "यह संविधान द्वारा इस देश में लाई गई लोकतंत्रात्मक जीवन-पद्धति की ठोस **नहीं** तथा उसका अपरिहार्य अंग है।[7] इन मूल अधिकारों में काफी हद तक वे सभी पारंपरिक नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार आ गए हैं, जो सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 2 से 21 में **निर्दिष्ट** हैं। **न्यायमूर्ति** भगवती के अनुसार ये मूल अधिकार वैदिक काल से इस देश के लोगों द्वारा संजोए आधारभूत मूल्यों का निरूपण करते हैं और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करने तथा ऐसी दशाएं उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त हैं, जिनमें प्रत्येक मानव अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास कर सकता है। ये मानव अधिकारों के बुनियादी ढांचे पर गारंटी का प्रतिरूप बुनते हैं और राज्य पर व्यक्ति की स्वतंत्रता का इसके विभिन्न आयामों में अतिक्रमण न करने का वर्जनात्मक दायित्व आरोपित करते हैं।[8]

संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12-35 के अर्न्तगत समाविष्ट मूल अधिकारों का मूल आधार समता, समानता और सामाजिक न्याय है। समता, समानता और सामाजिक न्याय की द्वष्टि से अनुच्छेद 14 -18 विशेष महत्वपूर्ण हैं। समानता का अधिकार, जिसमें विधि के समक्ष समानता तथा विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14) धर्म, मूलवंश, जाति, **लिंग** या जन्मस्थल के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15), लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता (अनुच्छेद 16) और अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अंत (अनुच्छेद 17 और 18) शामिल हैं।[9]

संविधान का लक्ष्य अपने सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करना है। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि समाज में व्यक्ति के नाते महत्त्व दिया जाना चाहिए और जाति, धर्म, ऋलग, सम्पत्ति या अन्य किसी आधार पर भेदभाव **नहीं** किया जाना चाहिए। सामाजिक न्याय की स्थिति के अन्तर्गत अस्पृश्यता या छुआछूत जैसी ंत्रिम सामाजिक दीवारों के लिए कोई स्थान **नहीं** हो सकता। सामाजिक न्याय का तात्पर्य सभी नागरिकों को स्वतन्त्रता के साथ समानता प्रदान करना है। आर्थिक न्याय, सामाजिक न्याय का पूरक है और इसका तात्पर्य है कि ऐसी व्यवस्था का अन्त कर दिया जाना चाहिए जिसमें कुछ साधन सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा बहुसंख्यक साधनहीन व्यक्तियों का शोषण किया जाता हो। आर्थिक न्याय के इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी सम्भव है, जबकि उत्पादन और वितरण के साधनों पर समस्त समाज का अधिकार हो और उनका प्रयोग समस्त समाज के हितों की —ष्टि से ही किया जाए। इसमें सभी व्यक्तियों के लिए उनकी क्षमता और योग्यतानुसार रोजगार, रोजगार के बदले में भरण-पोषण के लिए पर्याप्त वेतन और गम्भीर आर्थिक विषमताओं का अन्त आदि बातें सम्मिलित हैं। 'राजनीतिक न्याय' का तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्तियों को राजनीतिक क्षेत्र में स्वतन्त्र और समान रूप से भाग लेने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। वयस्क मताधिकार और धर्म, जाति, वर्ण, आदि के आधार पर राजनीतिक क्षेत्र में किसी भी भेदभाव का निषेध राजनीतिक न्याय प्राप्ति के साधन है।[10]

संविधान की प्रस्तावना के अन्तर्गत न केवल न्याय वरन् इसके साथ ही स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व को भारतीय संविधान का लक्ष्य घोषित किया गया है। हमारे संविधान निर्माता नकारात्मक स्वतन्त्रता की धारणा से **नहीं** वरन् ऐसी सकारात्मक स्वतन्त्रता से प्रेरित थे, जिसके आधार पर व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास सम्भव होता है। इसी आधार पर उनके द्वारा विचार अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता को संविधान में स्थान दिया गया है। स्वतन्त्र न्यायपालिका की धारणा को अपनाते हुए संविधान के अन्तर्गत स्वतन्त्रता की रक्षा के साधन की व्यवस्था दी गई है। समानता स्वतन्त्रता की पूरक है और हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा समानता को दो 'आयामों' में अपनाया गया है, ये हैं प्रतिष्ठा की समानता और अवसर की समानता।[11]

भारतीय संविधान में सभी वर्गों को समानता के आधार पर देखा गया है तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों के लिए विशेष उपबन्ध किये गये हैं। वे समस्त अधिकार जो कि मानव को प्राप्त होने चाहिए उन सब अधिकारों का इसमें समानता के आधार पर समावेश किया गया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि स्त्रियों को भी वे समस्त अधिकार भारतीय संविधान से प्राप्त हैं जो कि पुरुषों को प्राप्त हैं। हमारा संविधान भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय प्रदान करने की मंशा की घोषणा करता है। महिला अधिकारों के सन्दर्भ में यदि संविधान को द्वष्टि गत किया जाये तो यह "महिलाओं और पुरुषों में लैंगिक भेदभाव मिटाने की मंशा रखता है।" इस बात को तूल देता है कि महिलाओं को पारम्परिक रूप से प्रताडित किया गया है तथा हीन समझा गया है इस अन्याय को समाप्त करने के लिए संविधान, सरकार को महिलाओं के हित में विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है तथा निहित रूप में यह उम्मीद रखता है कि सरकार सभी कमजोर वर्गों, जिसमें महिलाएँ शामिल हैं की स्थिति सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न करेगी।[12]

संविधान में निहित महिला मानवाधिकार

''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

भारतीय संविधान में महिला मानवाधिकारों की सर्वप्रथम पुष्टि संविधान की प्रस्तावना में ही होती है।[13] इसके अतिरिक्त संविधान का अनुच्छेद 14, 15, 16, 21, 39 (ए) (डी) (ई), 42, 44, 51 (क) महिला मानवाधिकारों का द्वष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। भारत संविधान द्वारा महिलाओं को प्रदत्त अधिकारों को निम्न रूप में देखा जा सकता है।

विधि के समक्ष समता तथा विधियों का समान संरक्षण

संविधान का अनुच्छेद 14 प्रत्येक व्यक्ति के इस मूल अधिकार का प्रतिपादन करता है कि उसे भारत के उस राज्य क्षेत्र में विधि के समक्ष समता और 'विधियों के समान संरक्षण' से वंचित **नहीं** किया जाएगा। इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त संरक्षण केवल नागरिकों तक सीमित **नहीं** है बल्कि वह सभी व्यक्तियों पर लागू होता है। इसमें मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में **अन्तर्निहित** इस सिद्धांत को समाविष्ट किया गया है कि 'विधि के समक्ष सभी समान हैं और बिना किसी

विभेद के विधि के समान संरक्षण के हकदार हैं। हमारे संविधान में प्रयोग में लाए गए दो पदों 'विधि के समक्ष समता' और "विधियों का समान संरक्षण'' में विधि के शासन और समान न्याय की अवधारणाएं सन्निहित हैं।[14] 'विधि के समक्ष समानता एक नकारात्मक संकल्पना है, जिसमें यह विवक्षा है कि किसी भी व्यक्ति को जन्म या मत के आधार पर कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होंगे और सभी वर्ग समान रूप से सामान्य विधि के अधीन होंगे।[15] ज्ञातव्य है कि संविधान का अनुच्छेद 14 'महिला' को एक वर्ग के रूप में स्वीकृत करता है। इस तरहा संविधान का अनुच्छेद 14 महिला की समान प्रस्थिति को स्वीकार करता है।

धर्म, मूलवंश, जाति, ऋलग या जन्म-स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध-

जहां अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता और विधियों के संरक्षण की उद्घोषणा करता है, उत्तरवर्ती अनुच्छेद 15 से 18 भारत के नागरिकों के संबंध में सामान्य सिद्धांत को लागू करने के लिए कुछ क्षेत्रों का निर्देश करते हैं। अनुच्छेद 15 राज्य को आदेश देता है कि वह किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, जाति, मूलवंश, **लिंग**, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर विभेद न करें। इसमें शब्द 'केवल का प्रयोग अर्थपूर्ण है। इनमें से किसी एक या अधिक आधारों पर तथा अन्य आधार या आधारों पर आधारित विभेद इस अनुच्छेद के द्वारा प्रभावित **नहीं** होगा।

अनुच्छेद के खंड (2) में इस प्रतिषेध को विशेष रूप से लागू करने का उपबंध किया गया है। यह घोषणा करता है कि कोई नागरिक केवल धर्म, वंश, जाति, **लिंग**, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या (ख) पूर्णतया या भागतया राज्य विधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समणपत कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निबंधन या शर्त के अधीन **नहीं** होगा। स्पष्ट है कि प्रतिषेध राज्य एवं साधारण जनता, दोनों की कार्रवाइयों पर लागू होता है।

अनुच्छेद 15 के खंड (3) तथा (4) में विभेद न करने के सामान्य सिद्धांतों के अपवाद **अन्तर्निहित** हैं। ये राज्य को क्रमशः स्त्रियों तथा बच्चों के लिए और सामाजिक तथा शैक्षिक **दृष्टि** से पिछड़े हुए नागरिकों के कुछ वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देते हैं।[16]

लोक नियोजन में अवसर की समानता

अनुच्छेद 16 के खंड (1) तथा (2) के अधीन भारत के सभी नागरिकों को राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में अवसर की समानता की गारंटी दी गई है और किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, मूलवंश, जाति, **लिंग**, उद्भव, जन्म-स्थान या निवास के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में विभेद **नहीं** किया जा सकता या वह अपात्र **नहीं** होगा। ऋकतु उत्तरवतऍ खंड (3), (4), (4 क) और (5) में चार असाधारण स्थितियों का उपबंध किया गया है, जब अवसर की समानता के सामान्य नियम को तोड़ा जा सकता है। अतः खंड (3) के अधीन, संसद को उस सीमा का विनियमन करने का अधिकार दिया गया है। जहां तक राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को खंड (1) तथा (2) में प्रतिपादित सामान्य सिद्धांतों से प्रस्थान करने की इजाजत होगी। इस अधिकार के आधार पर संसद ने लोक नियोजन (निवास संबंधी अपेक्षाएं) अधिनियम, 1957 पारित किया। उसके द्वारा किसी लोक नियोजन के लिए किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के भीतर निवास के संबंध में कोई अपेक्षा विहित करने के लिए लागू सभी

विधियों को निरसित कर दिया गया था और उपबंध किया गया था कि किसी भी व्यक्ति को इस आधार पर निर्योग्य **नहीं** ठहराया जाएगा कि वह उस राज्य विशेष का निवासी **नहीं** है।[17]

अनुच्छेद 16 में दूसरे अपवाद के रूप में खंड (4) राज्य को 'नागरिकों के किसी पिछड़े वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त **नहीं** है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए विशेष उपबंध करने का अधिकार देता है। **अपितु** यह खंड केवल एक समर्थकारी उपबंध है और इसमें कोई अधिकार या कर्तव्य **अन्तर्निहित नहीं** है। अतः अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के मामले में, जो सामाजिक- आर्थिक पिछड़ेपन के कारण असमर्थ होते हैं, अवसर की समानता का मूल अधिकार राज्य सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व के प्रयोजन के लिए पृथक **वर्गीकरण** को उचित ठहराता है।[18]

अवसर की समानता के अनुच्छेद 16(1) तथा (2) में प्रतिपादित सामान्य नियम के बावजूद 77वें संविधान संशोधन के द्वारा जून 1995 में खंड (4क) जोडकर यह अनुबंध किया गया कि राज्य अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए राज्य के अधीन सेवाओं में किसी श्रेणी के पदों पर पदोन्नति के मामले में आरक्षण कर सकेगा, यदि उसकी राय में उनका प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है।[19]

जीवन तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता का संरक्षण

संविधान का अनुच्छेद 21 गारंटी देता है कि किसी व्यक्ति को 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा' उसके जीवन या उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित **नहीं** किया जाएगा। यह अधिकार नागरिकों को भी प्राप्त है और गैर-नागरिकों को भी। प्रसिद्ध गोपालन मामले में, 'वैयक्तिक स्वतंत्रता' का अर्थ केवल व्यक्ति की देह या उसके शरीर से संबंधित स्वतंत्रता लगाया गया था। इसके अलावा, इसके अंतर्गत केवल कार्यपालिका की मनमानी कार्रवाई के विरुद्ध संरक्षण आता है (ए. के. गोपालन बनाम मदास राज्य, ए आई आर 1950 एस सी 27)। लेकिन बाद में इसके परिक्षेत्र का विस्तार कर दिया गया और विधायी कार्यवाही के विरुद्ध संरक्षण को भी इसमें समाविष्ट कर दिया गया तथा अनुच्छेद 19 (1) में उपबंधित स्वतंत्रता के अधिकारों को, जो किसी व्यक्ति को वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं, इसके अंतर्गत रख दिया गया। मनेका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने वस्तुततः गोपालन केस को नामंजूर कर दिया और विचार व्यक्त किया कि न्यायालय को न्यायिक अर्थान्वयन की प्रक्रिया के द्वारा मूल अधिकारों के अर्थ तथा संदर्भ को क्षीण करने की बजाय उनके प्रभावक्षेत्र तथा परिक्षेत्र का विस्तार करने का प्रयास करना चाहिए। उसने निर्णय दिया कि 'जीवित रहने का अधिकार केवल शारीरिक अस्तित्व तक सीमित **नहीं** है बल्कि मानवीय गरिमा के साथ जीवित रहने का अधिकार भी उसके परिक्षेत्र में आता है (ए आई आर 1978 एस सी 597) फ्रांसिस कोरेली बनाम दिल्ली संघ-राज्य क्षेत्र के मामले में न्यायालय ने इस विचार का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जीवित रहने का अधिकार केवल पशु जैसे अस्तित्व तक सीमित **नहीं** है (ए आई आर 1981 एस सी 746)। न्यायालय ने यह भी कहा कि कर्मकारों को न्यूनतम मजदूरी का भुगतान न करना उन्हें मूलभूत मानवीय गरिमा के साथ जीवित रहने के अधिकार से वंचित करने के तुल्य है और यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है (पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ, ए आई आर 1982 एस सी 1473) आमतौर पर पटरीवासियों के केस के नाम से विख्यात केस में उच्चतम न्यायालय ने विचार व्यक्त किया कि अनुच्छेद 21 में 'जीवन' शब्द में 'आजीविका का अधिकार सम्मिलित है। उसने कहा कि यदि आजीविका के अधिकार को संविधान में दिए गए जीवन के अधिकार का हिस्सा **नहीं** माना जाता तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित करने का सबसे आसान तरीका यह है कि उसे उसके आजीविका के साधन से वंचित कर दिया जाए।[20]

संविधान का भाग 4 में समाविष्ट राज्य के नीति-निदेशक तत्व हमारे संविधान को अनोखी विलक्षणता प्रदान करतें हैं। व्यक्ति के मूल अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ संविधान निर्माता यह भी चाहते थे कि हमारा संविधान सामाजिक क्रांति के लिए एक प्रभावी साधन बने।[21] निदेशक तत्वों का लक्ष्य है इन आदर्शों को प्राप्त करना था, एक सच्चे कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो और अन्य बातों के साथ-साथ, आर्थिक शोषण और भारी असमानताओं तथा अन्यायों के अंत की व्यवस्था हो तथा राज्य पर न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करने का **भार** डाला जाए। अतः अनुच्छेद 38. जो निर्देशक तत्वों का मूलमंत्र तथा मर्म है, कहता है। राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 39 करता है कि राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से सभी पुरुषों तथा स्त्रियों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, समुदाय की भौतिक संपदा का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो; आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी सकेंद्रण न हो, पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो ("यह मूल अधिकार **नहीं** है **अपितु** एक संवैधानिक लक्ष्य है"- रणधीर बनाम भारत संघ, ए आई आर 1982 एस सी 879, रामचंद्र बनाम भारत संघ, ए आई आर 1984 एस सी 541), पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति का और बच्चों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न होः आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु तथा शक्ति के अनुकूल न हों और बच्चों तथा युवाओं को शोषण से बचाया जाए।[22] अतः इन सिद्धान्तों द्वारा भारतीय महिला को सामाजिक, आर्थिक और कानूनी रूप से अधिकार सम्पन्न करने की बात कही गयी है। तथापि आज भी ये आदर्श ही हैं, इनको व्यवहार में लागू करना अभी शेष है।

संविधान के अन्तर्गत **वर्णित** महिला अधिकारों के अन्य प्रावधानों के अन्तर्गत सर्वप्रथम अनुच्छेद 51क(ङ) में **वर्णित** मूल कर्त्तव्य को लिया जा सकता है। यह अनुच्छेद उपबन्धित करता है, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्त्तव्य है कि 'भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो। संविधान की धारा 243घ (3) के तहत ग्राम पंचायत में कम से कम एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। ये बारी-बारी से पंचायत के विभिन्न वार्डो में महिलाओं के लिए आरक्षित की जा सकती हैं। इसके साथ ही धारा 243घ (2) में यह प्रावधान है कि 243घ (1) के तहत अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिए आरक्षित सीटें उस श्रेणी की महिला के लिए भी आरक्षित रहेंगी। अनुच्छेद 243घ (4) के अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों की कुल संख्या की एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। इसी प्रकार अनुच्छेद 243न में नगरपालिकाओं में महिलाओं को आरक्षण दिया गया है। इस प्रकार भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में महिला अधिकारों की पुष्टि की गई है। संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन द्वारा महिलाओं को स्थानीय शासकीय संस्थाओं में एक तिहाई स्थानों पर आरक्षण का प्रावधान महिला अधिकारों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कदम है। महिला-अधिकारों के संवर्धन एवं संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त कुछ कानूनी प्रावधान भी किए गए हैं।

निष्कर्ष

संवैधानिक, विधायिक एवं कानूनी प्रावधानों के अतिरिक्त महिला अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन की दृष्टि से न्यायपालिका का भी महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है। वर्ष 1997 में उच्चतम न्यायालय द्वारा विशाखा बनाम राजस्थान मामले में कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन- **उत्पीड़न** की रोकथाम के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय करते हुए आवश्यक दिशा-निर्देश जारी किये गये। महिला अधिकारों की दृष्टि से न्यायालय का यह फैसला ऐतिहासिक महत्त्व का सिद्ध हुआ है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय द्वारा पैतृक सम्पत्ति में पुत्रों के समान पुत्री के भी समान अधिकार स्वीकार करना तथा अनिवार्य विवाह पंजीयन के लिए राज्य एवं केन्द्र सरकार को आवश्यक दिशा-निर्देश जारी करना महिला अधिकारों की दृष्टि से उल्लेखनीय योगदान है। इस प्रकार भारत में महिला अधिकारों के विकास का एक दीर्घ एवं संघर्षपूर्ण इतिहास रहा है। राजा राम मोहन राय एवं डॉ. बी. आर. अम्बेडकर जैसे महामानवों के अथक प्रयासों के अतिरिक्त संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों के साथ न्यायिक निर्णयों का महिला अधिकारों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस तरहा स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में महिला मानवाधिकारों को अपने अन्तर्तम में आत्मसात किया है। भारतीय संविधान के भाग 3 में समाविष्ट मूल अधिकारों और संविधान के भाग 4 में समाविष्ट राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के अन्तर्गत महिला अधिकारों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतीय संविधान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा वैधानिक इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के समान अधिकारों की पुष्टि करता है।

संदर्भ सूची

1. शैलेन्द्र मौर्य, (संपा.) महिला मानवाधिकार ज्वलन्त मुद्दे एवं प्रमुख व्यवस्थाएँ, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2012, पृ. 1
2. शैलेन्द्र मौर्य, नोट-1, पृ. 3
3. शैलेन्द्र मौर्य, नोट-1, पृ. 2
4. सुभाष काश्यप, संसदीय प्रकिया, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2014, पृ. 1
5. सुभाष काश्यप, हमारा संविधान, नेशनल बुक टस्ट, इंडिया, 2005, पृ. 43
6. सुभाष काश्यप, नोट-5, पृ. 75
7. सज्जन ऋसह बनाम राजस्थान राज्य, ए आई आर 1965 एस सी 845
8. मनेका गांधी बनाम भारत संघ, ए आई आर 1978 एस सी 597
9. सुभाष काश्यप, नोट-5, पृ. 76
10. प्रदीप त्रिपाठी, मानवाधिकार और भारतीय संविधान, राधा पब्लिकेशन्स, 2002, पृ. 89-90
11. सुनील महावर, भारतीय महिला को प्रदत्त मानवाधिकार : संवैधानिक व्यवस्थाएँ, शैलेन्द्र मौर्य, (संपा.) महिला मानवाधिकार ज्वलन्त मुद्दे एवं प्रमुख व्यवस्थाएँ, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2012, पृ. 13
12. प्रकाश नारायण नाटाणी, महिला एवं बाल विकास के नूतन आयाम, माया प्रकाशन मन्दिर, 2004, पृ. 112
13. सुनील महावर, नोट-11, पृ. 12
14. सुभाष काश्यप, नोट-5, पृ. 81
15. डी. डी. बसु, भारत का संविधान एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2003, पृ. 28
16. सुभाष काश्यप, नोट-5, पृ. 85
17. सुभाष काश्यप, नोट-5, पृ. 87-88
18. सुभाष काश्यप, नोट-5, पृ. 88

19. सुभाष काश्यप, नोट–5, पृ. 91
20. सुभाष काश्यप, नोट–5, पृ. 106–107
21. सुभाष काश्यप, नोट–5, पृ. 112
22. सुभाष काश्यप, नोट–5, पृ. 124